शोध पत्र- हिन्दी

संयुक्त परिवार के विघटन का बच्चों एवं महिलाओं पर पड़ता प्रभाव (साहित्यिक संदर्भ में)

* डॉ. राखी सिंह

* अतिथि व्याख्याता, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय,सागर

December, 2010

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की 'बसुधैव कुटुम्बकम्' की धारणा का प्रतीक है, तथा भारतीय सामाजिक संयुक्त संरचना में इसका अत्यधिक महत्व है। श्रीमती इरावती कार्वे ने संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुये लिखा है–''एक संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो सामान्यतः एक रसोई का पका भोजन करते हैं, जो सामान्य सम्पत्ति के भागी होते हैं, जो समान्य रूप से पूजा में भाग लेते हैं तथा जो किसी न किसी प्रकार एक दूसरे से रक्त संबंधी है''[1] वहीं सभी अपनी योग्यतानुसार धनोपार्जन करते हैं और आवश्यकतानुसार व्यय करते हैं। सभी कार्यो को करना संयुक्त परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना कार्य समझता है। सदस्यों में स्वार्थ के स्थान पर त्याग की भावना तथा द्वेष के स्थान पर प्रेम की भावना रहती है। यह भावनात्मक जुड़ाव परिवार, समाज और देश के लिए विकास में सहायक होता है।

वर्तमान परिस्थितियों में संयुक्त परिवार एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। उसमें अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, इन्ही परिवर्तनों को पारिवारिक विघटन कहा जाता है। इस विघटन के मूल में पारिवारिक संबंध है। जब पारिवारिक संबंधों में तनाव की स्थिति आ जाती है तो परिवार के सदस्यों के बीच सामंजस्य समाप्त हो जाता है। सामंजस्य समाप्त हो जाने पर पारिवारिक शांति और सुख समाप्त हो जाते हैं और परिवार का विघटन प्रारंभ हो जाता है। अतः ''पारिवारिक विघटन परिवार के सदस्यों में सामंजस्य का टूटना है।''[2] परिवार का यह विखराव समाज पर भी प्रभाव डालता है। आधुनिकता की होड़, तीव्र गति से परिवर्तित होता हुआ आर्थिक स्वरूप एवं कुछ नया करने की चाह ने परिवार को आज इस कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है कि उसकी संपूर्ण संरचना में परिवर्तन होता नजर आ रहा है। पति–पत्नी के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं होने के कारण एवं सामाजिक दबाव तथा विभिन्न तनावों के कानण आज संयुक्त परिवार टूटकर एकाकी परिवारों में और एकाकी परिवार भी विघटित होकर बिखर रहे हैं। जिसे श्यामनारायण विजयवर्गीय ने 'राजश्री' उपन्यास में राजश्री और आनंद के माध्यम से प्रस्तुत किया है। परिवार के इस विखण्डन ने बच्चों ने बालमन एवं महिलाओं के जीवनयापन को प्रभावित किया है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के प्रारंभिक निर्माण का केन्द्र परिवार है। बचपन में मनुष्य का व्यक्तित्व बड़ा ही परिवर्तनशील होता है। उसको चाहे जिस दिशा में आसानी से मोड़ा जा सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने तो यह माना है कि मनुष्य का व्यक्तित्व उसके बचपन में ही बन जाता है और बाद में उसका निरन्तर विकास होता है। व्यक्तित्व के विकास में बाल्यावस्था के संस्कार, आदतों आदि महत्वपूर्ण होते हुये भी पारिवारिक वातावरण का महत्व अधिक होता है। इसकी गूँज हमें श्यामनारायण जी के उपन्यास 'अपने देश' में स्पष्ट सुनाई देती है। परिवार यदि संयुक्त होता है तो बच्चों का समुचित पालन–पोषण होता है। संयुक्त परिवार व्यक्तियों के आपसी प्रेम, त्याग और बलिदान पर चलता है। बालक इन सभी गुणों को अनुकरण द्वारा सीखता है परिणामस्वरूप बच्चों में सहयोग, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, अनुशासन, न्याय, दया, क्षमा आदि गुणों का विकास होता है। यह सभी शिक्षाएँ बालक को संयुक्त परिवार से मिलती है एकाकी परिवारों में इन गुणों के विकास के लिए उतने अवसर नहीं मिलते क्योंकि माता–पिता आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में ही व्यवस्त रहते हैं।

पारिवारिक विघटन के कारण संपूर्ण परिवार अस्त–व्यस्त हो जाता है। बच्चे बिखर जाते हैं। एकाकी परिवारों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह उत्पन्न हो जाती है कि बच्चे किसके पास रहेंगे। अतः परिवारिक समायोजन की समस्या मुख्य रूप से उभरकर सामने आती है। पति–पत्नी दोनो के व्यस्त होने एवं अर्थोपार्जन को महत्व देने के कारण बच्चों का समुचित विकास नहीं हो पाता। यही कारण है कि बालक का हृदय कुंठा एवं निराशा से भर जाता है और वह अपराध की ओर बढ़ने लगता है। मोहन राकेश के नाटक 'आधे–अधूरे' ऐसे ही एक अनुशासनहीन और तनावों में जी रहे परिवार की कहानी प्रस्तुत करता है। संयुक्त परिवार में जहाँ परिवार के मुखिया का नेतृत्व एवं अन्य सदस्यों की कशल परवरिष बालक को नियंत्रित एवं अनुशासित करती है, वहीं पारिवारिक विघटन उन्हें कुमार्ग की ओर प्रेरित करने लगता है। कई मनौवैज्ञानिकों जैसे डरविन काफमैन[3], सिडनी बरमेन[4] आदि ने बताया है कि जो बचपन में बुरे अनुभव होते हैं वही अपराध का कारण बनते हैं। इसके उदाहरण हमें आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिल जाते हैं। 1968 में 'शेल्डन तथा ग्लूक' ने एक अध्ययन में पाया कि आधे से अधिक बालक पारिवारिक विघटन के कारण बाल अपराधी बन गये।[5] 'कैलिफोर्निया यूथ ऑथिरिटी'[6] ने अपने अध्ययन के परिणामों के आधार पर यह दर्शाया कि राज्य के 62 प्रतिशत बाल अपराधी भग्न परिवारों से सम्बद्ध थे। परिवारिक तनाव भी

बाल–अपराध बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अब्राहमसन[7] ने अपने सर्वे में पाया कि परिवार में तनाव से ही क्रूरता तथा घृणा का जन्म होता है, परिवार में तनावपूर्ण वातावरण से बच्चे अपने आप को असुरक्षित समझते हैं। मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चे पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का निरूपण किया है। प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'अलग्योजा' में भी पारिवारिक विघटन का बालमन पर पढ़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट किया है।

संयुक्त परिवार के विखण्डन के कारण आज बच्चे स्वतंत्र ही नहीं अपितु स्वछंद हो गये हैं। माता–पिता दोनों की व्यस्तताओं के कारण बच्चों की अनुशासनहीनता पर लगा अंकुश ढीला पढ़ जाता है। दिनभर बच्चे अकेले रहते हैं। अतः उनके क्रियाकलाप उनकी स्वेच्छा पर निर्भर होते हैं ऐसे में चलचित्र और टी.वी. पर दिखाये जाने वाले कार्यक्रम एवं अश्लील पुस्तकों का उनके मानस पटल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। 'ब्लूमर तथा हाउजर'[8] ने अपने अध्ययन के परिणामों में पाया कि 368 बाल अपराधियों में 40 प्रतिशत को यह विश्वास था कि उनके जीवन पर सिनेमा का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। न्यूकॉम्ब[10] के अनुसार चलचित्र बालकों को जीवन का क्षणिक दर्शन प्रदत्त करते हैं तथा कुमार्ग की ओर प्रवर्त करते हैं क्योंकि बच्चे अभिनेताओं, अभिनेत्रियों यहाँ तक कि विज्ञापन की भाषा तथा आचरण का अनुसरण करते हैं। 'आधे–अधूरे' में बिन्नी के चरित्र में इसी प्रकार का बाल बोध दिखाया गया है।

श्री आर.ई. बावर ने संयुक्त परिवार का महत्व बताते हुए लिखा है– ''परिवार बालक के जीवन के प्रथम 5 वर्षो में उसे समस्त सामाजिक पर्यावरण प्रदान करता है। यह मानवीय व्यक्तित्व का गर्भाशय है। इस छोटे से प्राथमिक समूह को राज्य अपने भविष्य के नागरिकों की, उनके जीवन में अत्यंत निर्माणात्मक वर्षो में, प्रारंभिक देखभाल एवं प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व देता है। इससे घर एवं परिवार हमारे कुल सांस्कृतिक आदर्शों का केन्द्र बन जाते हैं।''''सूखी डाली'' में सयुंक्त परिवार का यही महत्व स्पष्ट किया गया है।

संयुक्त परिवार के विघटन से जहाँ बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो गया है वहीं महिलाओं के जीवन स्तर पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। संयुक्त परिवार में स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय होती है। स्वतंत्रता तो नाम मात्र की ही होती है। उनके सामने अनेक प्रतिबंध होते हैं– घूमने, बातचीत करने, अपने पति से मिलने, इच्छानुसार घर का संचालन करने तथा मनोरंजन आदि पर इतनी पाबंदी होती है कि अगर कहा जाये कि रूढ़िवादी संयुक्त परिवार में उसकी स्थिति दासी से जरा भी अच्छी नहीं है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सास प्रतिबंध की संज्ञा होती है, ननद उसकी माध्यम और बहू प्रतिबंध का केन्द्र। हालाकि यह स्थिति नगरीय परिवेश में कम और ग्रामीण परिवेश में अधिक होती है। कुसुम अंसल का उपन्यास 'एक और पंचवटी' में उसकी नायिका साधवी संयुक्त परिवार के वातावरण में घुटन महसूस करती है। संयुक्त परिवार के विघटन के कारण स्त्रियों के जीवन स्तर एवं शिक्षा में सुधार आया है। पहले सयुंक्त परिवार में स्त्री का जीवन सिर्फ परिवार तक ही आबद्ध था शिक्षा की कमी के कारण तथा आर्थिक रूप से निर्भर न होने के कारण उन्हें पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता था। 'ये लड़की' उपन्यास में कृष्णा सोवती ने नर के महत्व तथा नारी की हीनता का प्रसंग बड़ी खूबसूरती से व्यक्त किया है। पर आज स्त्री को सभी क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त हैं। 'गोदान' की मालती में प्रेमचंद ने शिक्षित स्त्री की इन्हीं विशेषताओं को चित्रित किया है। आज पत्नी दासी नहीं पति की सहयोगी एवं मित्र है। आज उसमें इतनी क्षमता है कि पति के साथ हर क्षेत्र में अपना योगदान दे सकती है और देती भी है। 'गबन' उपन्यास की जालपा अपने पति रमानाथ का साथ देकर इसका उदाहरण प्रस्तुत करती है। सिर्फ इतना ही नहीं आज स्त्रियाँ आर्थिक क्षेत्र, शैक्षणिक क्षेत्र व राजनीति के क्षेत्र में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। किन्तु शिक्षा के साथ स्त्रियों में स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति का विकास हुआ जिससे परिवार भी टूटने लगे हैं।

पहले संयुक्त परिवार का हर सदस्य चाहे स्त्री हो या पुरुष बुजुर्गों की देखभाल में रहते थे। सभी पर परिवार के मुखिया का पूर्ण नियंत्रण रहता था। अतः वे कोई गलत काम नहीं कर पाते थे तथा घर के कार्यो को मिलजुलकर करते थे। किन्तु संयुक्त परिवार के विघटन से पुरुष के कार्यों में न्यून मात्रा में परिवर्तन हुये जबकि महिलाओं के कार्यों में अनेक परिवर्तन आये हैं। आज की महिला सिर्फ गृहस्वामिनी ही नहीं है बल्कि वह प्रेमिका, संगिनी, सलाहकार, नर्स, डॉक्टर, व्याख्याता आदि सब कुछ है। इन पदों की पूर्ति करना उसके लिए कठिन हो रहा है। कार्यों में ऐसी जटिल प्रक्रिया में उसका इनमें सामंजस्य न कर पाना स्वभाविक है। इससे असंतुलन आता है और पारिवारिक विघटन आरंभ हो जाता है। 'आधे–अधूरे'' की सावित्री नौकरी करके सारे परिवार का पालन–पोषण करती है किन्तु वह परिवारिक सामंजस्य स्थापित करने में असफल रहती। सावित्री की मानसिक उलझन और खींझ का दिग्दर्शन कराने में बार–बार उसका कवर्ड खोलना और बन्द करना चप्पलों को फेंकना आदि यथार्थ परक है।

आधुनिक युग में वैवाहिक सुख संबंधी भूमिकाएँ समूह द्वारा निर्धारित नहीं की जाती है। स्त्री, पुरुषों के बीच घर पर किसका अधिकार हो, आर्थिक व्यवस्था कौन करे? बच्चों पर किसका नियंत्रण हो आदि प्रश्नों पर मतैक्य नहीं हो पाता तो अनेक संघर्ष वैवाहिक सुख समाप्त कर देते हैं। जैनेन्द्र का 'सुखदा' एक ऐसी ही कुण्ठाग्रस्त नारी की कहानी है। इस आधुनिक युग में स्त्री की स्थिति और कार्यों में जटिलता इतनी उत्पन्न हो गई कि अगर वे इनसे संतुलन नहीं बना पाती तो पारिवारिक जीवन क्लेशमय हो जाता है। पारिवारिक विघटन से उत्पन्न हुये दुख एवं क्षोभ के कारण युवक–युवतियाँ नशे की ओर अग्रसर हो जाते हैं। अपने नशे की पूर्ति के लिए वे ऐसे जघन्य कार्यों को अंजाम देते हैं, जो न सिर्फ समाज के

लिए बल्कि मानवता के लिए भी कलंक होते है।

संयुक्त पारिवारिक विघटन के चलते अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम, स्नेह, सहायता, जो भारतीय संस्कृति के अंलकरण हैं, ये मानो अतीत की चीजें बन गई हों। दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति तो तब देखने में आती है जब पुत्र पिता को पहचानने से इंकार कर देता है, भाई–भाई की हत्या कर देता है, पति–पत्नी में तलाक हो जाते हैं एवं विवाह संबंध टूटकर बिखर जाते हैं। बेमेल शादियाँ, उनका टूट जाना, विवाह पूर्व यौन संबंध, बिना पाणिग्रहण संस्कार के माँ बन जाना, पत्नी के रहते पति का दूसरों से संबंध बना लेना, स्वछंद होने के कारण पत्नी का किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रेम संबंध होना आदि ऐसे तत्व हैं जिन्हें हम सामाजिक कुरीतियों की संज्ञा देते हैं। ये सभी पारिवारिक विघटन के ही दुश्परिणाम हैं। वर्तमान समय में पिता पुत्री पर कुदृष्टि डाले इससे ज्यादा समाज का, परिवार का पतन क्या हो सकता? इसका यथार्थ चित्रण ऊषा प्रियम्बदा ने 'रूकोगी नही राधिका' उपन्यास में किया है।

जेनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' और प्रेमचंद ने 'निर्मला' में अनमेल विवाह ओर उसके दुष्परिणामों का चित्रण किया है। भगवती चरण वर्मा ने 'टेढ़े–मेढ़े रास्ते' 'सामर्थ्य और सीमा' में संयुक्त परिवार की समस्या का सटीक चित्रण किया है। कहीं न कहीं समाज में जो परिवर्तन की लहर चल रही है उसका सटीक और यथार्थ चित्रण हमें साहित्य में देखने को मिलता है क्योंकि साहित्य समाज की अनुगूंज को सच्चे अर्थों में प्रतिध्वनित करता है। एक और हम 21वीं सदी में जाने की बात कर रहें तो दूसरी ओर संयुक्त परिवार के विघटन के कारण ऐसे तनावों को झेल रहे हैं, जिससे संपूर्ण शांति खत्म हो रही है। किसी भी विकास के पथ पर चलने के लिए आवश्यक होता है कि संपूर्ण परिवेश में, व्यक्तित्व में, शांति का तत्व विद्यमान रहे। परन्तु तनावों के कारण यह संभव नहीं हो पाता, तो हम कैसे आगे बढ़ने की सोच सकते हैं। यही नहीं संपूर्ण राष्ट्र एवं विश्व की समृद्धि के लिए भी सुख शांति आवश्यक है जिसके लिए विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठन कार्य कर रहे हैं। फिर भी अगर पारिवारिक स्तर पर हम शांति कायम नहीं कर पायेगे तो संपूर्ण प्रयास व्यर्थ हैं। आज हम अपने चारों ओर जो युद्ध, तनाव, आतंक का माहौल देख रहे हैं वह स्वस्थ सामाजिक संगठन के न होने का ही परिणाम है। जिसके मूल में संयुक्त परिवार का विघटन है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि पारिवारिक स्तर हो रहे विघटन को रोका जाये, तभी हम स्वस्थ, सुखी एवं प्रगतिशील सामाज की कल्पना कर सकते हैं। यह हमें केवल व्यक्तिगत विकास एवं समृद्धि ही प्रदान नहीं करेगा वरन् समाज एवं राष्ट्र के विकास में भी सहायक होगा। क्योंकि –

vxj pkgr g mex rk vkil dk 0;ogkj u HkyA
dlh Hkh gk ek;lh ij ge viu lLdkj u HkyAA

संदर्भ ग्रंथ

1. Karve. J. - Kinship Organisation in Indian, P.10 2. The Author - 3. Kaufmen Irvin - Character Disorders in parents of Dellinquents, 1959, P.15 4. Bermen Sidney - Antisocial Character disorder - 1964, P.142 5. Sheldon Glueek - Delinquents and non Delinquents perspective - 1968, P.12 6. A Survey of 341 Delinquents girls in California, Journal of Delinquency 1923, Val. 8 P. 163-21 7. A Brahamson Devid - The psychology of Crim 1960, P. 43 8. Herbert Blumer and philp M. Hauser - Movie Delinquency and crime 1933, P. 35